हिन्दी के विकास में' वीणा '

पत्रिका का योगदान

बी एल आच्छा
पेरंबूर,चेन्नई (तमिलनाडु)
मो-9425083335

शताब्दी की ओर अग्रसर वीणा निरंतर प्रकाशित पत्रिका है। यही उसका बहुमान नहीं है। वह जिस नगर और संस्था से प्रकाशित होती है, उसकी पीठिका ऐतिहासिक गौरव लिए हुए है। महात्मा गाँधी ने 1918 में इसी संस्था के मंच से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का संकल्प क्रियान्वित किया और 1935 में इसी मंच से हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की घोषणा की। 'वीणा' उसी भूमि का सारस्वत प्रकाशन है, हिन्दी के विकास का ऐतिहासिक दायित्व लिए हुए। एक तरह से यह महात्मा गाँधी के संकल्प की संवाहिका है और आज सृजन संस्कार के माध्यम से देश के हर कोने के साथ एटलांटिक की लहरों के पार अन्तरराष्ट्रीय क्षितिज का स्पर्श कर रही है।

महात्मा गाँधी के उन भाषणों को वीणा ने प्रकाशित किया है, जिसमें राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकार्यता और व्यवहार्यता के कई बिन्दु है। साथ ही भारतीय भाषाओं की स्वतंत्र सत्ता और हिन्दी के साथ उसके मेल के अनुबंध भी स्पष्ट हैं। गाँधी स्पष्टतः कहते थे कि केवल साहित्य को आधार बनाया जाए तो बंगला का बहुत समृद्ध साहित्य है। हिन्दी के लिए वे कहते हैं - "हिन्दी भाषा को बहुत आदमी बोलते हैं और यह भाषा सीखने में भी पढ़ने में भी सरल है, इसलिए राष्ट्रभाषा का अधिकार रखती है।" पर हिदायत भी देते हैं कि राष्ट्रभाषा तो हिन्दी ही बन सकती है, परन्तु मैं उसकी मर्यादा रख देना चाहता हूँ कि अन्य प्रान्तों की भाषाओं का स्थान न ले।" हिन्दी के हिन्दुस्तानी स्वरूप को भी इन प्रकाशित भाषणों में स्पष्ट किया गया है।

'वीणा' उन्हीं राष्ट्रपिता के संकल्प की धारयित्री और संवाहिका है। पर कोई भी पत्रिका केवल साहित्य सृजन से ही हिन्दी को समृद्ध नहीं कर सकती। जनजीवन की संवेदनाओं और विभिन्न ज्ञानधाराओं को समावेशी बना कर ही भाषा को समर्थ बनाया जा सकता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' को यही विस्तृत फलक दिया था, उड़ान के लिए खुला आकाश। 1943 की वीणा के अंक में महावीरप्रसाद द्विवेदी बनारसीदास चतुर्वेदी से कहते हैं-" न तुमने काश्तकारी कानून का अध्ययन किया है, न ग्रामीण पंचायतों के बारे में कुछ जानते हो। खेती और किसानों के रहनसहन के बारे मे तुम्हारा ज्ञान होगा ही क्या? संपादक यों ही बन बैठे हो?"(वीणा , अक्टूबर 2017का विशेषांक, पृष्ठ,130) 'साहित्य और जीवन 'निबंध में यह कथन हिन्दी साहित्य को जनजीवन की जड़ों से साक्षात् करने की प्रेरणा देता है। 1942 की वीणा में एक काल्पनिक संवाद में हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं - " साहित्य का इतिहास ग्रंथों और ग्रंथकारों के उद्भव और विलय की कहानी नहीं है। वह कालस्रोत में बहे आते हुए जीवन्त समाज की विकास कथा है।(वही,पृष्ठ 101)सन्1978 में वीणा में प्रकाशित रामविलास शर्मा के आलेख की निर्भ्रान्त संकल्पना है- "जनता के अलावा कला का दूसरा स्रोत नहीं है।" (वही,पृष्ठ 179)और सरोजिनी नायडू 1941 में प्रकाशित आलेख में लिखती है- "हमारे ऊपर हुकूमत शब्द की चलती है, किसी सम्राट की नहीं।" (वही, पृष्ठ 82)

इन ऐतिहासिक संदर्भों का निहितार्थ यही है कि वीणा जनधर्मी पत्रिका रही है। यह लोकतांत्रिक चेतना, राष्ट्रीय स्वातंत्र्य, सांस्कृतिक चेतना और हिन्दी के साथ भारतीय भाषाओं के सहकार की पत्रिका है। जिन लेखकों ने इस पत्रिका को अभिसिंचित किया है,वे हिन्दी साहित्य के मील के पत्थर हैं और लोकमंगल की चेतना के प्रकाशपुंज। वे ही हिन्दी की प्राणधारा को जनजीवन में तलाशते हैं। भारत की सांस्कृतिक यात्रा के मूल्यमान और प्रगतिशीलता को पहचान देते हैं। बदलते जीवन और तकनीकी बदलाव के साथ वैश्विक सरोकारों से आँगन के पार द्वार तक झाँकते हैं। वीणा के अनेक आलेखों में जीवन और भारत की प्राणधारा का प्रतिबोध है। 1929 की वीणा में भुवनेश्वर मिश्र रहस्यवाद की पश्चिमी दृष्टि का विवेचन करते हुए लिखते हैं -" रहस्यवाद की छानबीन से सिद्ध होता है कि ईश्वर के कुछ गुण, आचार-विचार आदि मनुष्य में अवश्य वर्तमान है।"(वही पृष्ठ,10)और यही बात मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं- :- राम तुम ईश्वर हो,मानव नहीं हो क्या?"हिन्दी साहित्य में मनुष्य और मानव मंगल की प्रतिष्ठा का

जीवन्त स्वर वीणा के अनेक आलेखों में मुखर है। 1980 की वीणा में शांतिप्रिय द्विवेदी 'मनुष्यता की प्रतिमूर्ति प्रेमचन्द ' शीर्षक आलेख में लिखते हैं-'मनुष्यता की दृष्टि से कितने ही संपन्न व्यक्ति उनकी (प्रेमचन्द) तुलना में अभागे और निर्धन जान पड़ते हैं।"(वही, पृष्ठ 181) 1944 की वीणा में प्रभाकर माचवे लिखते हैं-" चारों ओर से संक्रांतिकाल के गिरते कगारों से प्राचीन मूल्यों के नाश का दृश्य है। लेखक गतभ्रांत चिकित्सा में है। इनमें से यदि वह मार्ग खोजना चाहे तो एक ही उपाय है और वह है भारत के लोकजीवन की आत्मा में बैठकर वह जन-जन का साहित्य लिखे।"(वही, पृष्ठ146) 1980 की वीणा में श्यामसुन्दर व्यास का महादेवी से लिया गया साक्षात्कार न केवल छायावाद की वस्तु व्यंजना का प्रकाशक है, बल्कि एक केन्द्रीय दृष्टि व्यक्त है-" रामायण-महाभारत युद्ध के काव्य हैं ,परन्तु उनके भीतर आस्था हर शब्द के भीतर गुंथी हुई है। काव्य में मनुष्य की वह मूर्ति आनी चाहिए, जो अखंडित है।"(वही,पृष्ठ 186)

ये सभी कथन हिन्दी की उच्च सरस्वती के हैं, जो ईश्वरीय सृष्टि को मनुष्य और जीवन में साकार पाती है। जो जनजीवन और साहित्य के संबंध को हिन्दी की ऊर्जा बनाती है। इसीलिए स्वर्गिक आकाश हिन्दी साहित्य में जमीनी बना है, लोकजीवन से प्रतिबद्ध। 1945 की वीणा में धर्मवीर भारती के आलेख -"आधार और प्रेरणा' की ये पंक्तियाँ हिंदी की जीवट हैं- "जीवन से विमुख न होना वत्स । न जीवन से हार मानना । दुख के हर आघात में सुख भी छाया ढूँढना! निशीथ के तम में उषा की किरणों को खोजना। शिखर! उस तम से हारकर पथरीले मार्ग पर ठोकरें न खाना।" (वही, पृष्ठ 163)जिस दुर्दान्त मानव जिजीविषा की बात हज़ारीप्रसाद द्विवेदी करते हैं, उसी प्रेरणा को 1943 की वीणा में गिरिजाकुमार माथुर 'अश्कजी और उनकी कविता ' में उद्धृत करते हैं-"और मैं राख /युगों की शीतल ठंडी राख/किन्तु उसमें फिर से / निर्माण करने की शक्ति शेष है।"(वही, पृष्ठ 119) फिर बालकृष्ण शर्मा नवीन की क्रांति भावना - 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उपलपुथल मच जाए' कविता में जन-आन्दोलन का ही सजग उद्वेलन है।

यह सारा विवेचन इसलिए कि गाँधी हिन्दी की जड़ों को जनजीवन में देखते हैं, जो बहुतायत में भारत के आमजीवन की भाषा है। और इसी हिन्दी में वीणा के ख्यातनाम रचनाकारों की बदलती युग-लिपि में है। पर केवल साहित्य सृजन ही नहीं, वीणा में विषयों का यह वैविध्य हमें इतिहास की काल धारा और ज्ञानधाराओं से हिन्दी को समृद्ध भी करता है। 1929 में सरजू प्रसाद तिवारी ने 'बाल स्वास्थ्य रक्षा" पर आलेख लिखा है। 1935 की वीणा में भगवतशरण उपाध्याय ने 'साहित्य में कलाओं के अभिनिवेशन' आलेख में संगीत, काव्य, नृत्य, गृहनिर्माण, तक्षण (स्क्ल्पचर)उद्यान कला, धातुकर्म के साहित्यिक संदर्भ दिए हैं। सूर्यनारायण व्यास ने ज्योतिष और हस्तरेखा पर लिखा है। सुनीतिकुमार चटर्जी ने दो हज़ार साल पुरानी नाग संस्कृति का परिचय दिया है। ख्यालीराम द्विवेदी ने 'अग्नि का महत्व', आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने' पानीपत का युद्ध और अफगान', प्रतापनारायण मिश्र ने आयोजन प्रणाली, शशांक दुबे ने सिनेमा जगत संबंधी आलेखों से वीणा की ज्ञानपरक परिधि को विस्तार दिया है।

साहित्यिक दृष्टि से एक नजर दौड़ाई जाए तो वीणा के संपादन में एक जाग्रत तटस्थता और युग का स्पन्दन आधारभूत है। वीणा न तो शिविरबद्धता की पत्रिका है, न विचारधाराओं के अनदेखी की। यह केवल मध्यममार्ग नहीं है, क्योंकि वीणा ने शब्द-क्रांति के हर तेवर की, हर लेखक के स्वत: स्फूर्त सृजन की, वादों की वैचारिक संपन्नता की, प्रतिबद्ध दृष्टि वाले रचनाकारों की अनदेखी नहीं की है। 1941की वीणा में पं.नंददुलारे वाजपेयी ने न शुद्ध साहित्य ,न वाद वाली बल्कि व्यावहारिक समीक्षा की वकालत की है,जो जीवन से संबद्ध हो।(वही, पृष्ठ 92) न ही वीणा ने विधा विशेष को केन्द्रीय बनाया है। महाकाव्यों की प्राणधारा से लेकर लघुकथा जैसी सूक्ष्मप्राण विधाओं की जीवन्त शक्ति को समृद्ध किया है। कई भ्रान्तियों को स्पष्ट भी किया है, जो साहित्य की इतिहास धारा में विमर्श का हिस्सा रही हैं। मसलन महादेवी वर्मा से साक्षात्कार में छायावाद की सांस्कृतिक चैतन्य धारा को स्पष्टता मिली है। महादेवी ने छायावाद को अज्ञात कुलशील बालक कहा है, पर प्रकृति में मनुष्यता के आरोप को वैदिक आलोक से जोड़ते हुए कहा कि यह तो भारतीय प्रवृत्ति है। बाहर से नहीं आई है। प्रभाकर माचवे ने भी लिखा है - "प्रगतिशीलता प्रथमत: भारतीय है। यह भारतीयता से विच्छिन्न, अलग कटी हुई वस्तु नहीं।" (वही,पृष्ठ 146)'प्रगतिशील तुलसीदास 'शीर्षक निबन्ध में 'ब्यौहार राजेन्द्रसिंह लिखते हैं- "संतों के सुधारवाद को पलायनवादी कहने की अपेक्षा प्रगतिवादी कहना ही उपयुक्त जान पड़ता है।" (वही , पृष्ठ 154) आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी ने 'तुलसी और प्रेमचन्द' शीर्षक निबंध में लिखा है- "तुलसीदास प्रबोधयुग के हैं और प्रेमचन्द जागरण युग के।"(वही, पृष्ठ 181)

विचारधाराओं और साहित्यिक शिविरों से मुक्त वीणा का शब्द-चिंतन मुक्त दिशाओं का प्रवाह रहा है। रामचन्द्र शुक्ल का लोकमंगल भी है, तो साम्यवादी प्रगतिशीलता के कई अक्सों को लक्षित करते रामविलास शर्मा और अन्य मार्क्सवादी चिंतक भी। पर रमेश दवे 'शब्दजीवियों के शब्दाडम्बर' निबन्ध में लिखते हैं-" यदि कोई रचनाकार अप्रतिबद्ध है तटस्थ, विचारधारा निरपेक्ष रह कर विनम्र, सरल और सौम्य है तो उसे अबौद्धिक करार दे दिया जाता है।" (वही,पृष्ठ 212) वीणा ने प्रकाशन की इस शतकीय यात्रा में कभी इन चुनौतियों और विचारधाराओं के नुकीले अक्सों से कन्नी नहीं काटी है, बल्कि सोच के अनेकान्त की प्रकाशन भूमि को उर्वरा बनाया है। यहाँ तक कि मंचीय कविता के प्रति उपेक्षा भाव को दरकिनार कर बच्चन-नीरज ही नहीं, कुंजबिहारी पांडेय, बालकवि बैरागी जैसी समृद्ध साहित्यिक-मंचीय परम्परा को बहुमान दिया है।

बात हिन्दी की ही चल रही है, इसलिए भाषा और लिपि पर भी दृष्टिपात जरूरी है। 1929 की वीणा में 'हिन्दी भाषा और साहित्य' शीर्षक आलेख में दत्तात्रय बालकृष्ण कालेकर लिखते हैं-" नागरी लिपि में आजकल जितने मोड़ प्रचलित हैं, उनमें का जो मोड़ छपे अक्षरों से मिलता जुलता हो, वह मोड़ हमें नागरी लिपि में पसन्द करना चाहिए। इस रूप में ऐसा मोड़ गुजराती में है।"(वही,पृष्ठ13) गुजराती लिपि के इन मोड़ों की वकालत एक मराठी विद्वान ने की है। ऐसी ही भाषायी सम्मिश्रण की उदार दृष्टि हरिऔध की है - " आजकल हिन्दी भाषा में अँग्रेजी के या यूरोप की भाषाओं' के कुछ शब्द रेल ,तार,डाक, कचहरी आदि मिलते जा रहे हैं। किन्तु इससे हिन्दीपन में कोई अंतर नहीं पड़ा है। (वही, पृष्ठ 91) 1954 की वीणा में में ऐतिहासिक उपन्यासकार, वृंदावनलाल वर्मा ने तो शीर्षक ही दिया है-" हिन्दी का अलग मंत्रालय हो।"(वही, पृष्ठ 169) पर एक संतुलित और नियामक दृष्टि रमेश दवे की है- "अपनी भाषा में उपलब्ध शब्दों के बजाए यदि अँग्रेजी, या अन्य भाषाओं के शब्दों का ऐसा प्रयोग किया जाए कि न वह हिन्दी रहे, न अँग्रेजी; तो कोई भी भाषा अपना शील संस्कार कैसे बचा सकती है?" (वही पृ.214)

वीणा और हिन्दी की प्रतिबद्धता का परिचायक मार्च 2018 का एक अंक ही पर्याप्त है। यह दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना का शताब्दी वर्ष था। यह भी कि 29 मार्च 1918 को श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति के प्रागंण में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में महात्मा गाँधी ने हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने की पहल की थी। इस अंक में रमेश दवे ने राष्ट्रभाषा हिन्दी को लेकर अंतर्विरोधों का विश्लेषण किया है। एक गहरी वेदना के साथ वे भाषायी राजनीति और हिन्दी मानस की अंग्रेजी के सामने संकल्पहीन विवशताओं का इजहार करते हैं। हिन्दी जगत को संकल्प भी चाहिए और भाषायी स्वामिमान की कीमत चुकाते हुए अँग्रेजी वरीयता को त्यागना होगा। गाँधी जी के भाषा विषयक चिंतन पर ऐतिहासिक दृष्टिपात और भारतीय संविधान के हिन्दी अनुवाद के संघर्ष विषयक आलेख प्रभावी हैं।

इंटरनेट पर हिन्दी, लिपियों के साथ यूनीकोड से हिन्दी फाँट की समस्या का निराकरण, देवनागरी लिपि की विकास यात्रा और लिपि चिह्नों में नये बदलाव, हिन्दी का मानकीकरण, देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता, अंग्रेजी के सामने हिन्दी की स्थिति और संवैधानिक प्रतिज्ञा, कंप्यूटर और हिन्दी शिक्षण, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की शताब्दी यात्रा जैसे पुराने ऐतिहासिक और तकनीकी पक्षों पर अनेक आलेख मूल्यवान हैं। पर अतिथि संपादक सूर्यप्रसाद दीक्षित का संपादकीय हिन्दी के बदलते स्वरूप और भविष्य की हिन्दी के बारे में दूरदर्शी दृष्टि का संकेतक है। दीक्षित जी ने भविष्य की हिन्दी को लेकर कई बिन्दु दिए हैं। यही कि अब क्लासिक भाषा की अपेक्षा जनता की भाषा का महत्व बढ़ेगा और बहुभाषिकता उसकी शक्ति होगी। कंप्यूटर से भाषा का मानकीकरण आसान होगा। जीवित भाषा के रूप में हिन्दी में नये शब्दों की आवक होगी तो विदेशी भाषाओं में भी हिन्दीकरण तेज होगा। भाषाओं संक्षेपण की प्रवृत्ति के साथ भाषा प्रौद्योगिकी का विकास होगा। अनुवाद के साथ बजार भाषा विकसित होगी। ब्लॉग, इमेल, चैटिंग , सोशल मीडिया, ई-गवर्नेन्स आदि के साथ सृजन क्षेत्र में ऑडियो- पाठ लोकप्रिय होंगे।भाषा में कविता की अपेक्षा गद्यात्मकता का विकास होगा। कंप्यूटर और अंतर्जाल के यांत्रिक युग के दौर में मानुष भाव को सुरक्षित रखने की चिंता भी है और उसके लिए नये पाठ्यक्रम, कार्यशालाएँ, पुस्तकों की वितरण व्यवस्था के साथ साहित्य को जनोन्मुख बनाने की नजरिया भी दिया है। मेरा तात्पर्य इतना ही कि 1929 से आज तक हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने, भारतीय भाषाओं से सहकार, राष्ट्रलिपि के साथ कंप्यूटीकरण तक हिन्दी को निरन्तर अद्यतन करने की दिशा वीणा का संकल्पित आराध्य है।

इस संकल्पित प्रयास की विभिन्न दिशाओं में प्रकाशित वीणा के पिछले कुछ अंकों की चर्चा के बगैर यह आलेख अधूरा ही रहेगा। संपादक श्री राकेश शर्मा ने नौ दशकों की वीणा में हिन्दी के नामचीन साहित्यकारों के आलेखों/रचनाओं का चयनित

संकलन संपादित किया था। उसकी अगली कड़ी के रूप में प्रवासी अंक भी महत्वपूर्ण है। आँगन के पार द्वार के लेखकों की धुरी तो यह वाक्य है- "भारतीयों द्वारा पिज्जा कभी स्वाद बदलने के लिए खाया जा सकता है, वह रोटी का पर्याय नहीं हो सकता है।" (वीणा, जनवरी 2018पृ.) इस अंक में प्रवासी भारतीयों की तीसरी पीढ़ी में हिन्दी की चिंता, दो लोक के प्रवासी भारतीय, अपनी संस्कृति के प्रति नॉस्टेलजिया की प्रशंसा मगर चिपके रहने की बुराई, विदेशों में भारतीय संस्कृति का राजदूत जैसे अनेक पक्षों की वैचारिकी भी है और सृजन में दोनो आँगनों का चित्रण भी। यही तो हिन्द महासागरीय लहरों की अटलांटिक से मिलाप की पूँजी है।

'नवगीत विशेषांक 'का आकार तो गीतों से भी बड़ा है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के साथ नवगीत की संरचना, प्रगीत तत्त्व, लोकलय, नये बिम्ब, परिवेश की धड़कन आदि अनेक पक्षों पर सुविचारित मार्गदर्शी आलेख इस विधा की धरोहर हैं। फिर पुराने - नये गीतकारों की रचनाओं के साथ मूल्यांकन भी विधा को समृद्ध करता है? वीणा के कई अंकों में बोलियों की ताजगी से हिन्दी और भारतीय भाषाओं को समृद्ध करने के संकेत मिलते हैं, वहीं इस बौद्धिक संपदा को लोकभूमि भी कहा गया है।

कुछ पुराने अंकों के आलेखों या रचनाओं में भी आज के युग की पद-ध्वनि को सुन सकते हैं- "बेटा बहू विदेश से लौटे न आज भी माता-पिता का कर्ज चुकाने के दिन गये।

XX Xx

"खजाना खोल दे आँकड़ों का एक ही क्लिक पर

अभी हम नेट की शैली के ज्ञानी तक नहीं पहुँचे।"

X X X X

"कितने ही लोग कह उठते हैं - इस प्रकार की आर्थिक स्वतन्त्रता यदि स्त्रियों को मिल जाए तो संसार से पारिवारिक सुख उठ जाएगा, घर में पति-पत्नी में मधुर संबंध नहीं रह जाएगा।"

पहले उद्धरण में वृद्धावस्था और प्रवासी विमर्श की पीड़ा है। दूसरे में' कंप्यूटर से बदलती दुनिया की आहट है। तीसरे में राहुल सांकृत्यायन ने नारी-विमर्श के विरोधियों पर व्यंग्यात्मक मार की है। वीणा के पुराने अंकों में शोध प्रक्रिया, पाठालोचन, पाठ निर्धारण, काव्य शास्त्रीय विमर्शों का प्रकाशन हुआ है, वहीं नये अंकों में कंप्यूटर प्रशिक्षण, विधाओं में समकालीन प्रयोगधर्मिता, विधाओं का तकनीकी पक्ष, तकनीक और भाषाएँ, भूमंडलीकरण और साहित्य, इतिहास और आधुनिकता, रचना और आलोचना की चुनौतियाँ, साक्षात्कार और लेखकीय अंतरंग का प्रस्फुटन जैसे अनेक पक्ष उभरकर आए हैं। एक संपादकीय का शीर्षक ही पर्याप्त होगा-"चिट्ठी, कबूतर, डाकिया, सोशल मीडिया और साहित्य"।

"तकनीक के घोड़े पर साहित्य की सवारी" जैसे संपादकीय ही नहीं जनजीवन की राष्ट्रीय - वैश्विक चिन्ताओं को भी साहित्यिक परिदृश्य में ज्वलंत बनाया है। नारी विमर्श का जेण्डर अनुपात प्रकाशन में परस्पर स्पर्धा करता है ।यह प्रगति है। हिन्दी का अर्थ केवल वर्णों का समूह नहीं, जनजीवन की ऐतिहासिक और समकालीन चिन्ताधाराओं की मुखर अभिव्यक्ति है। वीणा ने इसी रूप में पाठकों को जोड़ा है ,जीवन्त समाज की मुखर भाषा के रूप में।